वैंकटेश औंकार

साहित्य में स्नातकोत्तर के बाद बैंगलोर से करीब 40 किमी पश्चिम में स्थित सेन्टर फोर लर्निंग में अध्यापक हैं।

यह अनुभव एक छोटे से स्कूल के एक ऊर्जावान शिक्षक का है। वह ऊर्जा से लबालब बच्चों के साथ रचनात्मक कार्य में जुटा है और बच्चों के साथ वह स्वयं भी सीखता है। वह अपने शिक्षण के दैनिक अनुभवों पर अलोचनात्मक दृष्टि से विचार करता है। आत्म की यह टोह निर्द्वन्द्व नहीं है बल्कि रोजमर्रा के बहुत से द्वन्द्वों से जूझता है। यह अनुभव शिक्षण की इन्हीं चुनौतियों से पाठकों को परिचित कराता है।

कूद पड़ने का निमंत्रण

मैं एक शिक्षक हूं। मेरी कर्म-भूमि, सेन्टर फोर लर्निंग, बैंगलोर से बाहर चौबीस-एकड़ में फैली एक जगह है। मेरा कोई बॉस व चपरासी नहीं है, बल्कि मैं और मेरे साथी बराबरी की सरजमीं पर काम करते हैं। यह जितना दिखता है उतना आसान नहीं है, किसी ढांचेगत सोपानिकता के अभाव में भी सत्ता व अधीनस्थता की गत्यात्मकता प्रायः अपनी पैठ बना ही लेती है। किसी जगह को सही मायनों में सहयोगात्मक कर्मभूमि बनाए रखने में बहुत-सी ऊर्जा खपानी पड़ती है।

मेरा जिनसे साबका पड़ता है उनमें संभावनापूर्ण पहचान से जूझते युवा, नई रुचियों से सराबोर, विकसित होते किशोर और अपने बचपन की दहलीज पर खड़े, मासूमियत से भरे नौ साल के बच्चे होते हैं। मैं अपने विषय को लेकर अपनी दीवानगी को अपने ऊर्जावान छात्रों में हस्तांतरित करने का आनंद लेता रहता हूं। मैं तुलनात्मक मूल्यांकन के चक्कर में नहीं पड़ता और उन्हें दण्डित भी नहीं करता (हालांकि कई बार यह मुझे काफी लुभाता है!)। वे मुझे मेरी आदतों, ज्ञान व उपस्थिति को लेकर हर रोज चुनौती देते रहते हैं। इसके बदले में मैं उन्हें स्कूल को अपना बनाने, आनन्द व जिम्मेदारीपूर्ण माहौल रचने के लिए प्रोत्साहित करता हूं। यह वह जगह है जो बाहरी तंत्र व ढांचों पर तथा साथ ही साथ खुद अपने विश्वासों व पहचानों पर संदेह करने व उन्हें प्रश्नांकित करने की अनुमति ही नहीं देती बल्कि उसकी मांग भी करती है।

मैं यहां कैसे पहुंचा? जब मैं स्नातक हुआ तो स्वाभाविक ही था कि मेरे सामने कुछ

विकल्प थे। एक विकल्प अकादमिक जीवन जीने का था : आर्थिक रूप से सुरक्षित, उत्तरोत्तर उन्नतिपूर्ण और मोटे-तौर पर समाज में अपनी पहचान बनाते हुए जीवन चुनने का। या फिर मैं एक ऐसी नौकरी पा सकता था जो मेरी कुशलताओं का बेहतर से बेहतर व्यापार कर सकती थी। मगर मेरी रुचि हमेशा से ही जीवन के 'सत्व' (मैटा) संबंधी प्रश्नों को जानने-समझने में रही है : द्वंद्व व आत्म की प्रकृति को जानना-समझना, चेतना की चलायमान प्रकृति को जानना-समझना, व्यक्ति व समाज के रिश्तों को जानना-समझना। मुझे आश्चर्य होगा अगर मेरे चुने हुए काम का मेरे प्रश्नों से कोई रिश्ता हुआ तो या क्या पता आगे चलकर धीरे-धीरे ये ही मेरे जीवन का क्षेत्र हो जाएं। जैसे-जैसे हम बड़े होते जाते हैं 'उमंगों भरा आदर्शवाद' ही हमारा सबसे ज्वलंत प्रश्न होता जाता है। उस समय मैंने यह महसूस किया कि मैं इन मुद्दों पर, वास्तविक स्थितियों में अपने जीवन व काम का हिस्सा बनाते हुए ठोस रूप में काम करना चाहता हूं।

रचनात्मक स्कूली वातावरण ही एक शिक्षक के सामने सीखने की यह संभावना प्रस्तुत करता है। इस तरह का वातावरण भावुक व सामाजिक आत्म को तीव्र एवं निर्मम आत्म में बदल सकता है। वयस्क-- 'हमें नाव नहीं खेनी' के सुर में-- सुरक्षित रिश्तों के अलिखित नियमों के तहत चलने के इच्छुक होते हैं, लेकिन बच्चे नहीं। वे स्पष्टवादी व अप्रत्याशित होते हैं और सुविधाजनक भूमिकाओं में फिट नहीं बैठते। वे आपको अपने बोदे नियमों व निरापद परंपराओं की फिर से जांच करने के लिए बाध्य करते हैं। हालांकि पारंपरिक स्कूल अपनी बनावट में ही इतने तंग होते हैं कि वे कोलाहल व अव्यवस्था को छलकने व उससे सीखने का बहुत कम अवसर देते हैं। मैं जिस स्कूल से जुड़ूं उसे ऐसा होना था कि वह बच्चों व अध्यापकों के लिए स्वतंत्रता व अनुशासन के बीच संतुलन का बहुत अच्छे से ध्यान रखता हो।

मैं अपने आपको मध्यम वर्गीय बच्चों को शिक्षा देने वाले एक छोटे इंग्लिश मीडियम स्कूल में बाजार भाव से भी कम तनख्वाह पर काम करने वाले शिक्षक के रूप में वर्णित कर सकता हूं! तो फिर मैं वंचितों को शिक्षा देने वाले स्कूल या धनाढ्यों को शिक्षा देने के बदले अच्छी तनख्वाह देने वाले किसी स्कूल की बजाए यहां क्यों हूं? इसका एक महत्त्वपूर्ण जवाब यह है कि मैं शिक्षा की वृहत् परिभाषा का हिस्सा बनना चाहता हूं। मैं उसका हिस्सा नहीं बनना चाहता जो मात्र व्यक्ति के पूर्ण विकसित होने भर की गारंटी देती है; बल्कि उसका हिस्सा होना चाहता हूं जो मेरे 'सत्व' संबंधी प्रश्नों को भी खुद में इस तरह शामिल कर ले कि मैं खुद भी आगे बढ़ सकूं और मेरे सानिध्य में आने वाले बच्चे भी उससे लाभान्वित हो सकें।

जैसा कि बहुत से पाठक जानते होंगे कि यह स्कूल बारह-पन्द्रह लोगों के एक समूह द्वारा चलाया जाता

है जो सारे निर्णय सामूहिक रूप से लेते हैं। किसी हैडमास्टर अथवा प्रबंधन समिति के होने का मिथ्या सुख व सहारा न होने के कारण यहां 'हम' बनाम 'वे' का बोध नहीं है; यहां ऐसा कोई नहीं है जिससे शिकायत की जाए और जिसकी शिकायत की जाए। मेरी जिम्मेदारियों के क्षेत्रों (शिक्षण, मार्गदर्शन व प्रशासन) में मैं इस स्वतंत्रता का भरपूर लुत्फ उठाता हूं; तो साथ ही साथ स्वाभाविक रूप से अपने सहकर्मियों के प्रति जवाबदेह भी होता हूं। यह ऐसा क्षेत्र है जो संघर्ष अथवा प्रतिद्वंद्विता को जन्म दे सकता है तो सहयोग भी पैदा कर सकता है। विचार यह नहीं है कि दूसरों के नजरियों पर तर्क अथवा भावुकता के साथ जीत दर्ज करनी है बल्कि एक-दूसरे को तब तक सुनना है जब तक कोई सामूहिक निर्णय नहीं पनप जाता- वरना तो हम उसे थककर छोड़ देते हैं। यह संवाद का एक तरीका है जो हमें अप्रत्याशित किन्तु सार्थक दिशा की ओर ले जाता है और स्कूल की गतिविधियों के लिए खाद का काम करता है।

सेन्टर फोर लर्निंग (सीएफएल) के शिक्षाक्रम में कक्षा से बाहर किए जाने वाले कामों, हाथ से की जाने वाली गतिविधियों, प्रकृति से लगाव तथा सीखने की प्रक्रिया व कुशलता आधारित पद्धति पर निश्चित ही जोर है। इस तरह से हम ऊपरी तौर पर बहुत से प्रगतिशील स्कूलों के जैसे ही हैं। लेकिन एक महत्त्वपूर्ण अंतर भी है। हमारा शिक्षाक्रम अपने-आपमें कोई पूर्ण चीज नहीं है; बल्कि यह जिन्दगी के उन सभी पहलुओं की धैर्य से पड़ताल करता है जिनसे हमारा सामना होता है। अगर यह कहना कुछ ज्यादा लगता है तो मैं आपको एक उदाहरण देता हूं। जब कोई बच्चा यहां गणित पढ़ रहा होता है और उस विषय के सौन्दर्य की सराहना करना सीख रहा होता है तो वह किसी परिस्थिति में संभावित मानवीय प्रतिक्रियाओं की समग्र श्रेणी जैसे भय, प्रेरणा, प्रतिरोध, गर्व, निराशा आदि के बारे में भी सीख रहा होता है। वह भ्रांति व स्पष्टता के बीच अंतर करना सीख रहा होता है और यह भी सीख रहा होता है कि कैसे उसके अपने व दूसरों के बारे में उसकी अपनी छवियां उसके नजरिए को प्रभावित करती हैं। इन जटिलताओं को इस क्रम में किनारे कर दिया जाता है कि बच्चे एकाग्रचित्त होकर उन सीमित उद्देश्यों का अनुसरण करें जिन्हें हम वयस्कों ने उनके लिए चुना है। परन्तु ये ही जटिलताएं हमारी रोजमर्रा की जिन्दगी की विषय-वस्तु होती हैं और इन्हें अनदेखा नहीं किया जा सकता, चाहे हम इसे मानें अथवा नहीं; हमें ऐसा लगता है कि एक व्यक्ति व वृहत्तर समूह के भले के लिए दरअसल तो यह धैर्य से पड़ताल करना बहुत ही जरूरी है।

अगर यह काव्यमय लग रहा है तो यह सबसे असरदार ढंग नहीं है। निश्चित ही आंतरिक (व बाह्य) संघर्ष तथा संदेह होते हैं। जब मैं अपने साथियों की ओर देखता हूं और उन्हें सफलता व नाम पाते देखता हूं, और मैं खुद द्वेष व असुरक्षा जैसी भावनाओं से अछूता नहीं हूं। दरअसल पूरी बात यही है; मैं नहीं मानता कि एक जिज्ञासु वातावरण में केवल बाहरी स्थितियां, काम व रिश्तों का प्रतिदिन का जाना-पहचाना ढांचा या इसी प्रकार की और चीजें दुख व हर रोज की चिंता से बचा सकती हैं।

तो, वर्तमान में यहां जिन्दगी कैसी है? साहस अथवा मेहनत के साथ जुड़ी चुनौतियों वाली, इसे एक छोटे से लेख में समेट पाना मुश्किल है। यहां भी जिन्दगी वैसी ही है जैसी वह और सब जगह है : अप्रत्याशित मोड़ों से भरी, आंतों को ऐंठ देने वाली, सरल, आनंदित करने वाली। इस महत्त्वपूर्ण अंतर के साथ कि यहां जिंदगी के प्रवाह को इसी के सिर के बल खड़ा कर देने की व उसके स्वरूप पर अकेले व सामाजिक रूप से गहन तरीके से प्रश्न उठाने की संभावना है। जो ऐसी किसी यात्रा का इरादा रखते हैं उन्हें मैं बस यही कहूंगा : कूद पड़िए पानी अच्छा है। ◆

भाषान्तर : प्रमोद पाठक